National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2015 ; 1(3): 43-46
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. सरोज गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर,
सत्यवती कॉलेज (सुबह),
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली

मोक्ष - गीता के सन्दर्भ में

डॉ. सरोज गुप्ता

समस्त प्रकार के दुःखों (यथा- जन्म, जरा, व्याधि तथा पुनर्जन्म) से आत्यन्तिक रूप से छुटकारा पाने का नाम ही मोक्ष है। मोक्ष शब्द ' मुक्ति' का ही पर्याय है। ' मुक्ति' शब्द की निष्पत्ति मुच् धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से होती है, जिसका अर्थ है- छुटकारा, निस्तार, आवागमन के चक्र से आत्मा का मोचन। श्रीमद्भगवद्गीता में जीवात्मा के आवागमन (पुनर्जन्म) के नाश को मोक्ष कहा गया है-

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।

कठोपनिषद् में ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के आत्मा में लय (स्थित) हो जाने को मोक्ष कहा गया है-

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमांगतिम्।

यह मुक्ति कोई स्थान विशेष नहीं, न इसको प्राप्त करने के लिए कोई वैतरणी (नदी) ही पार करनीपड़ती है, बल्कि अपनी वास्तविक स्थिति को जान लेना है जो केवल प्रत्यक्ष दर्शन से ही संभव है।इसी से समस्त ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। कारण कार्यरूप ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर जीव की हृदय ग्रन्थि (बुद्धि में स्थित अविद्या वासनामय काम) टूट जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते है औरवह मुक्त हो जाता है। शिवगीता में भी ऐसा ही कहा गया है- मोक्ष कोई लोक नहीं है जहाँ जीवनिवास करता हो, बल्कि हृदय की अज्ञान ग्रन्थि का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है, जिससे उसको फिर इस लोक में नहीं आना पड़ता।

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्राम्यन्तरमेव वा।
अज्ञान हृदय ग्रन्थि नाशो मोक्ष इति उच्यते।

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा के परमात्मा से मिलन (परमात्मा में विलय) को मोक्ष बताया गया है- ' मामुपेत्यतु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते' । जिस क्षण यह पुरूष (जीवात्मा) भूतों के पृथक- पृथक भाव का एक परमात्मा में ही स्थित तथा उस परमात्मा से ही सम्पूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता

में मोक्ष को परमसिद्धि परमशान्ति, परमगति तथा परमधाम के नाम से इंगित किया गया है।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

जिस परमपद को प्राप्त करके जीवात्मा लौटकर संसार में नहीं आते उस स्वयं प्रकाश परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही, वही मेरा परमधाम है। इस परमधाम (मोक्ष) को तत्वज्ञान प्राप्त करने वाला ही प्राप्त करता है- ' ज्ञानं लब्धवा परां शान्तिम चिरेणाधिगच्छिति' । कठोपनिषद् में भी ब्रह्म के ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया गया है-

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महदभयं वज्रमुद्यतं य एताद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।

श्वेश्व.तरोपनिषद् में भी ब्रह्म (शिव) के ज्ञान को मोक्ष प्राप्ति का उपाय बताया गया है-

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य सृष्टामनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, अविद्या और उसके कार्यरूप दुर्गम स्थान में स्थित, जगत के रचयिता, अनेकरूप और संसार को एकमात्र भोग प्रदान करने वाले शिव को जानकर जीव परमशान्ति (मोक्ष) को प्राप्त करता है। शास्त्रों के अनुसार कर्मों का फल भोगने के लिए ही जीव को जन्म, आयु और भोगों की प्राप्ति होती है। अविद्या, अस्मिता आदि पाँच प्रकार के क्लेश रहने पर जीव को कर्म के पाक-जाति आयु और भोग के रूप में प्राप्त होते हैं। कर्म का फल भोगने के लिए जीव इधर पंच भौतिक शरीर ग्रहण करता है और उससे पुनः नवीन कर्म करके नवीन अदृष्ट का संचय करता है तथा पुनः उसका फल भोगने के लिए शरीर धारण करता है- " कुर्वन्ते कर्म भोगाय कर्म कर्तुं च भुंजर्ते" जैसे प्राणी अनन्त पारावार से एक भंवर से दूसरे भंवर में पड़ता चला जाय, उसे कहीं विश्राम प्राप्त न हो वे ही इस जन्म-मरण विच्छेद तथा अपार संसार समुद्र में प्राणी एक जन्म से दूसरे जन्म में, दूसरे जन्म से तीसरे जन्म में इसी प्रकार संसार प्रवाह की परम्परा में पड़ा हुआ जीव बह रहा है उसे कहीं विश्राम नहीं मिलता। अहंता ममता में आसक्त प्राणी जन्म से कर्म में और कर्म से जन्म में प्रवाहित होता रहता है जैसे किसी चक्र में फंसा हुआ जीव भी छुटकारा नहीं पाता। गीता में भी भगवान ने संसार को कर्मबन्धन बताया है "लोकोऽयं कर्मबन्धनः" । बन्धन कारक कर्म ही निष्कामता से यथार्थ सम्पन्न होने पर ज्ञान के भी साधक बन सकते हैं। यह समत्व रूप योग का ही कौशल है कि बन्धन स्वभाव वाले कर्म अपने स्वभाव को छोड़ देते हैं और उस स्थिति में जीवात्मा कर्ता न रहकर दृष्टिमात्र रह जाता है, रागद्वेष बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं। उसी स्थिति को मोक्ष कहा गया है। लौकिक एवं प्रवृत्ति मूलक कामनाओं को साधित करने हेतु किया गया कर्म आसक्ति पैदा करता है तथा वह मोक्ष प्राप्ति में सबसे बड़ा विघ्न उपस्थित करता है। यह कामना जीव में स्थित ज्ञान को उसी तरह ढक लेती है जैसे प्रकाश को धुँआं घेरे रहता है, स्वच्छ दर्पण को मैल ढक लेता है और कुक्षिस्थ गर्भ अपने ही घेरे से ढ़का रहता है। जिस समय अग्नि पर से धुँआ हट जाता है तो प्रकाश दिखायी देने लगता है, दर्पण पर से धूल हट जाती है तो प्रतिबिम्ब साफ-साफ दिखायी देने लग जाता है। यह बात चित्त के निर्मल हो जाने पर होती है। निष्कामता के साथ मानसिक वाचिक और शारीरिक कार्य सम्पन्न करने पर धीरे-धीरे अन्तः करण को निर्मलता प्राप्त होती ह वस्तुतः निरर्थक बन्धनों का ज्ञान हो जाना ही मोक्ष है। आचार्य शंकर ने मुक्ति या मोक्ष के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि पारमार्थिक कूटस्थ नित्य, आकाश सदृश सर्वव्यापक सर्वक्रियाओं से रहित नित्यतृप्त निरवयव और स्वतः ज्योतिर्मान है। जिसमें धर्म और अधर्म तथा भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों काल नहीं है। मोक्ष के सम्प्रत्यय वे ही लक्षण है जो ब्रह्म के लक्षण हैं। वस्तुतः ब्रह्म तथा मोक्ष की अवस्था एकार्थक शब्द है। मोक्ष आनन्द स्वरूप है वह न्याय दर्शन के निःश्रेयस की तरह शुष्क नहीं है। मोक्ष एक ऐसी सत्ता का साक्षात्कार है, जो अनन्तकाल से विद्यमान है। जब अज्ञान का लोप हो जाता है तो यथार्थ आत्मा स्वतः प्रकाशित हो जाती है, ठीक उसी प्रकार मलिनताओं के दूर हट जाने पर स्वर्ण में चमक आ जाती है अथवा जैसे मेघशून्य रात में तारे प्रकाश देने लगते हैं जबकि उन्हें अभिभूत करने वाला दिन छिप जाता है। मोक्ष एक वर्णनातीत अनुभव है जो विचार तथा वाणी और बुद्धि से परे है। तार्किक सूक्ष्मता की एक सीमा को उपलक्षित करने हेतु तथा तार्किक ज्ञान और लौकिक अनुभव से मोक्षानुभूति को पृथक करने हेतु शंकर श्रुतियों के जिन वक्तव्यों की प्रस्तुति करते हैं

भ्रामक और आत्माविरोधी प्रतीत होते हैं। जो इसे जानता है उसको यह अविज्ञात है, और जो नहीं जानता है उसको इसका रहस्य ज्ञात है। उपनिषदा के अनुसार ब्रह्म ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती ऋते ज्ञानान्मुक्ति इसके अतिरिक्त मोक्ष का अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है। जीव जब श्रवण मनन निधिध्यासन द्वारा आत्मा ब्रह्मैक्य तत्ववमसि सर्वंरवल्विदं ब्रह्म का अनुभव कर लेता है तो वह मुक्त हो जाता है। कर्म ध्यान उपासना चित्त शुद्धि के साधन हैं, चित्त शुद्धि अविद्या से निवृत्ति कराकर ज्ञान प्राप्ति के योग्य बनाता है। आत्मब्रह्मैक्य ज्ञान से उसके कर्म बन्धन नष्ट हो जाते है। ऐषणाऐं समाप्त हो जाती हैं तथा- धनैष्णा, पुत्रैषणा, ऐश्वयैषणादि। श्रीमद्भगवद् गीता में मोक्ष के सन्दर्भ में कहा गया है-

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।

अर्थात् बाह्य विषयों से आसक्ति-रहित अन्तःकरण वाला मनुष्य आत्मा में जो सुख का अनुभव करता है। यहां अक्षय सुख को ही मोक्ष कहा गया है ऋग्वेद में भी यही कहा गया है-

ध्रुवं ज्योतिर्निहतं दृश्ये कंनो जविष्ठं पतयत्स्वत्तः।
विश्वदेवाः समनसः सकेता एव क्रूतुभि वियन्ति साधु।

अर्थात् जो लोग प्राणिमात्र में विराजमान स्थिर ज्योति का ध्यान करते हैं तथा उसमे समत्व बुद्धि रखते हैं वे ही परमात्मानन्द का सुख भोगते हैं। अन्य दर्शनों की भांति श्रीमद्भगवद् गीता में भी मोक्ष (मुक्ति) में परमानन्द प्राप्ति की बात कही गयी है इस परमानन्द को ही शांति की प्राप्ति कहा गया है। श्रीमद्भगवद् गीता में कहा गया है कि मनुष्य कामनाओं त्यागकर निरअहंकार होकर जब निज आत्मानन्द रस में तृप्त होता है, तब उसे ' मुक्ति' की प्राप्ति होती है।
अथर्ववेद मे भी कहा गया है-

अकामो धीरो अमृत स्वयंभू रसे न तृप्तो कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानाम्।

अर्थात्- निष्काम तथा ब्रह्मानन्द रस से सन्तुष्ट होने वाला कहीं भी न्यून नहीं होता अर्थात् सर्वत्र परिपूर्ण काम होकर विचरता है। ब्रह्मानन्द रस का यथावत् उपयोग करने से मृत्यु का भयदूर हो जाता है एवं आत्माअजर अमर एवं तरूण है यह बात अच्छी प्रकार से जान लेने के पश्चात् मनुष्य शांन्ति पद अर्थात् मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जब साधक समर्पण भाव से निष्काम कर्मो का अनुष्ठान श्रद्धा और भक्ति तथा पूर्ण निष्ठा से करता है तो वह शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद् गीता के द्वितीय अध्याय में स्थित प्रज्ञ को मोक्ष का अधिकारी माना गया है, जिसकी समस्त कामनाऐं नष्ट हो गई हैं जो आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है वह स्थित प्रज्ञ है। युजर्वेद में भी यही कहा गया है- कि कामना परित्याग से पुरूष स्थित प्रज्ञ हो जाता है।

अंगान्यात्मन् भिषजा तद्श्विनात्मानमंगे समधात् सरस्वती।
इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः।

प्राणी के हृदय में जितने प्रकार की कामनाऐं भरी हैं जब वे नष्ट हो जाती हैं तब मनुष्य इस शरीर में ही मुक्त हो जाता है अर्थात्- ब्रह्म में ही मिल जाता है। ऐसे पुरूष को ही स्थित प्रज्ञ कहते हैं।

निःस्वार्थ भाव से किया गया कल्याण परक कर्म मोक्ष की प्राप्ति करा देता है, साधक को चाहिए कि वह यज्ञ द्वारा देवताओं को उन्नत करे और देवता भी साधक को उन्नत करें। इस प्रकार एक दूसरे को उन्नत कर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करा दें। जो अन्तरात्मा में ही झांकने वाला होता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है। जिसकी इन्द्रियाँ अपने विषयों से विरक्त हो गई हैं और जो काम क्रोध लोभ मोह इच्छा से रहित हो गया है वह सदा मुक्त रहता है। वेद और उपनिषदों में भी स्पष्ट रूप से यही कहा गया है कि सब लोक लोकान्तरों से लौटकर प्राणी को इस संसार में पुनः पुनः जन्म लेना पड़ता है परन्तु परमात्मा के धाम को प्राप्त होकर प्राणी इस संसार पुनः जन्म नहीं लेता। श्रीमद्भगवद् गीता के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने वाले जीव पुनः जन्म-मरण के बन्धन में तो नहीं आता पर पूर्ण रूप से अपने अस्तित्व का विलोप सदा के लिए ब्रह्म में नहीं करता है अपितु ईश्वर के

सन्निध्य में पहुँचकर अपने अस्तित्व को विद्यमान रखता हुआ आनन्द का उपभोग करता है। कतिपय स्थलों से संकेत मिलते है कि मुक्तात्माऐं ईश्वर न बनकर ईश्वर के समान हो जाती है। मोक्ष विशुद्ध तादात्म्य नहीं अपितु केवल गुणात्मक समानता सदृश आस्तित्व प्राप्त कर लेता है।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधम्र्यमागताः।
सर्गेऽपिनोपजायन्ते प्रलयेन व्यथन्ति च।

परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त हुए पुरूष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलय काल में भी व्याकुल नहीं होते। मोक्ष के स्वरूप के सन्दर्भ में माण्डूक्योपनिषद् में कहा गया है- " आत्म सत्य की उपलब्धि होने से (आत्मसाक्षात्कार होने पर) संकल्प न करता हुआ चित्त जब बाह्य विषय का अभाव हो जाने से ईधनरहित अग्नि के समान शान्त होकर निरूद्ध हो जाता है तब वह अज्ञान रूप बीज भाव (पुनर्जन्म) को प्राप्त नहीं होता, यही मुक्ति है। जिस समय योगी आत्मा को शुद्ध स्वरूप से जान लेता है उसी समय वह जीवन्मुक्त हो जाता है। जिस परार्द्धस्थायी (ब्रह्मलोक रूप) अन्य स्थान पर ध्यानी योगी जाते है उसके मोक्ष के लिए ऐसी किसी स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं होती। अज्ञान रूप बन्धन की निवृत्ति और ब्रह्म में लीन हो जाना ही उसका मोक्ष है। अध्यात्म रामायण का कथन है कि जिस समय सद् गुरू और शास्त्र के उपदेश से जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान होता है उसी समय मूल अविद्या अपने सूक्ष्म और स्थल कार्य के सहित परमात्मा में लीन हो जाती है। अविद्या की इस लयावस्था को ही मोक्ष कहते है। भागवत पुराण का मत है कि अज्ञान कल्पित कर्त्तृत्व भोकतृत्व आदि अनात्म भाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिर हो जाना ही मोक्ष है।

जिस प्रकार पक्षी वृक्ष को जल में गिरते देख उसमें आशक्ति छोड़ कर वृक्ष का परित्याग करके उड जाता है उसी प्रकार मुक्त पुरूष सुख और दुख दोनों का त्याग करके सूक्ष्म शरीर से रहित हो उत्तम गति (मोक्ष) को प्राप्त होता है। जैसे नद और नदियाँ समुद्र में मिलकर अपने नामरूप को त्याग देते है-

यथार्णवता नद्यो व्यक्तीर्जहति नाम च।
नदाश्च ता नियच्छन्ति तादृशः सत्वसंक्षयः।

तथा जैसे बड़े-बड़े नद छोटी-छोटी नदियों को अपने में विलीन कर लेते है उसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में विलीन हो जाता है यही मोक्ष है। अतः उपरोक्त श्रीमद्भगवद् गीता में मोक्ष का स्वरूप के सन्दर्भ में दिये गये विवरणों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि जीवात्मा को ब्रह्मभाव की प्राप्ति ही मोक्ष का स्वरूप है, जिसे प्राप्त करके उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यह केवल आत्म ज्ञान (तत्त्वज्ञान) अथवा ब्रह्म ज्ञान से ही सम्भव है।